

Basic format for Aptitude test in Department of Dramatics for UG Program

- 1. Soliloquy** - Anyone (Hindi or Gujarati) from given syllabus only
- 2. Poetry Recitation** - Anyone (Hindi or Gujarati) from given syllabus only
- 3. Mime** - You have to prepare your own and perform
- 4. Improvisation** - Topic will be given by the expert admission committee at the time of aptitude test and you have to perform.
- 5. Basic knowledge about Drama/Theatre art.**

The detail syllabus is attached herewith.

SOLILOQUY / DRAMATICS PASSAGE FOR MALE (HINDI)

Play: अंध युग

अश्वत्थामा यह मेरा धनुष है
धनुष अश्वत्थामा का
जिसकी प्रत्यंचा खुद द्रोण ने चढ़ाई थी
आज जब मैंने
धुर्योधन को देखा
निःशस्त्र, दीन
आंखों में आंसू भरे
मैंने मरोड़ दिया
अपने इस धनुष को ।
कुचले हुए सांप - सा
भयावह किन्तु
शक्तिहीन मेरा धनुष है यह
जैसा है मेरा मन
किसके बल पर लूंगा
मैं अब
प्रतिशोध
पिता की निर्मम हत्या का
वन में
भयानक इस वन में भी
भूल नहीं पाता हूं मैं
कैसे सुनकर
युधिष्ठिर की घोषणा
कि अश्वत्थामा मारा गया
शस्त्र रख दिये थे
गुरु द्रोण ने रणभूमि में
उनको थी अटल आस्था
युधिष्ठिर की वाणी में

पाकर निहत्था उन्हें
पापी धृष्टद्युम्न ने
अस्त्र से खंड - खंड कर डाला
भूल नहीं पाता हूं
मेरे पिता थे अपराजेय
अर्द्धसत्य से ही
युधिष्ठिर ने उनका
वध कर डाला ।
उस दिन से
मेरे अन्दर भी
जो शुभ था, कोमलतम था
उसकी भ्रूण - हत्या
युधिष्ठिर के
अर्द्धसत्य ने कर दी
धर्मराज होकर वे बोले
नर या कुंजर
मानव को पशु से
उन्होंने पृथक् नहीं किया
उस दिन से मैं हूं
पशुमात्र, अन्ध बर्बर पशु
किन्तु आज मैं भी एक अन्धी गुफा में हूं भटक गया
गुफा यह पराजय की ।
दुर्योधन सुनो !
सुनो, द्रोण सुनो!
मैं यह तुम्हारा अश्वत्थामा
कायर अश्वत्थामा
शेष हूं अभी तक
जैसे रोगी मुर्दे के
मुख में शेष रहता है
गन्दा कफ
बासी थूक

शेष हूं अभी तक मैं (वक्ष पीटता है)
आत्मघात कर लूं?
इस नपुंसक अस्तित्व से
छुटकारा पाकर
यदि मुझे
पिछली नरकाग्नि में उबलना पड़े
तो भी शायद
इतनी यातना नहीं होगी !
किन्तु नहीं !
जीवित रहूंगा मैं
अन्धे बर्बर पशु - सा
वाणी हो सत्य धर्मराज की ।
मेरे इस पसली के नीचे
दो पंजे उग आयें
मेरी ये पुतलियां
बिन दांतों के चीथ खायें
पायें जिसे !
वध, केवल वध, केवल वध
अंतिम अर्थ बने
मेरे अस्तित्व का । (किसी के आनेकी आहट)
आता है कोई
शायद पांडव - योद्धा है
आहा !
अकेला, निहत्था है।
पीछे से छिपकर
इस पर करुंगा वार
इन भूखे हाथों से
धनुष मरोड़ा है
गर्दन मरोड़ूंगा
छिप जाऊं, इस झाड़ी के पीछे। (छीपता है)

Play: आषाढ का एक दिन

कालिदास मैंने बहुत बार अपने सम्बन्ध में सोचा है मल्लिका और हर बार इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि अम्बिका ठीक कहती थी ।

(बांहे पीछे की ओर फैल जाती है और आंखे छत की ओर उठ जाती है)

मैं यहां से क्या नहीं जाना चाहता था? एक कारण यह भी था कि मुझे अपने पर विश्वास नहीं था। मैं नहीं जानता था कि अभाव और भर्त्सना का जीवन व्यतीत करने के बाद प्रतिष्ठा और सन्मान के वातावरण में जाकर मैं कैसा अनुभव करूंगा । मन में कही आशंका थी कि वह वातावरण मुझे छा लेगा और मेरे जीवन की दिशा बदल देगा... और यह आशंका निराधार नहीं थी ।

(आंखे मल्लिका की ओर झुक जाती है)

तुम्हें बहुत आश्चर्य हुआ था कि मैं काश्मीर का शासन संभालने जा रहा हूं? तुम्हें यह बहुत अस्वाभाविक लगा होगा । परन्तु मुझे इसमें कुछ भी अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होता । अभावपूर्ण जीवन की वह एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी । सम्भवतः उसमें कहीं उन सबसे प्रतिशोध लेने की भावना भी थी जिन्होंने जब - तब मेरी भर्त्सना की थी, मेरा उपहास उड़ाया था ।

(होंठ काटकर उठ पड़ता है और झरोखे के पास चला जाता है)

परन्तु मैं यह भी जानता था कि मैं सुखी नहीं हो सकता । मैंने बार - बार अपने को विश्वास दिलाना चाहा कि कभी उस वातावरण में नहीं मुझमें है । मैं अपने को बदल लूं, तो सुखी हो सकता हूं । परन्तु ऐसा नहीं हुआ । न तो मैं बदल सका, न सुखी हो सका । अधिकार मिला, सम्मान बहुत मिला, जो कुछ मैंने लिख उसकी प्रतिलिपियां देश भर में पहुंच गयीं, परन्तु मैं सुखी नहीं हुआ । किसी और के लिए वह वातावरण और जीवन स्वाभाविक हो सकता था, मेरे लिए नहीं था । एक राज्याधिकारी का कार्यक्षेत्र मेरे कार्यक्षेत्र से भिन्न था । मुझे बार - बार अनुभव होता कि मैंने प्रभुता और सुविधा के मोह में पड़कर उस क्षेत्र में अनधिकार प्रवेश किया है, और जिस विशाल में मुझे रहना चाहिए था उससे दूर हट आया हूं । जब भी मेरी आंख दूर तक फैली क्षितिज-रेखा

पर पडती, तभी यह अनुभूति मुझे सालती कि मैं उस विशाल से दूर हट आया हूं। मैं अपने को आश्वासन देता कि आज नहीं तो कल मैं परिस्थितियों पर वश पा लूंगा और समान रूप से दोनों क्षेत्रों में अपने को बांट दूंगा। परन्तु मैं स्वयं ही परिस्थितियों के हाथों बनता और चालित होता रहा। जिस कल की मुझे प्रतीक्षा थी, वह कल कभी नहीं आया और मैं धीरे - धीरे खण्डित होता गया, होता गया। और एक दिन... एक दिन मैंने पाया कि मैं सर्वथा टूट गया हूं। मैं वह व्यक्ति नहीं हूं जिसका उस विशाल के साथ कुछ भी सम्बन्ध था।

(क्षण भर वह चुप रहता है। फिर टहलने लगता है।)

काश्मीर जाते हुए मैं यहां से होकर नहीं जाना चाहता था। मुझे लगता था कि यह प्रदेश, यहां की पर्वत श्रृंखला और उपत्यकाएँ मेरे सामने एक मूक प्रश्न का रूप ले लेंगी। फिर भी लोभ का संवरण नहीं हुआ। परन्तु उस बार यहां आकर मैं सुखी नहीं हुआ। मुझे अपने से वितृष्णा हुई। उनसे भी वितृष्णा हुई जिन्होंने मेरे आने के दिन को उत्सव की तरह माना। तब पहलीबार मेरा मन मुक्ति के लिए व्याकुल हुआ था। परन्तु उस समय मुक्त होना मेरे सम्भव नहीं था। मैं तब तुमसे मिलने के लिए नहीं आया क्योंकि भय था तुम्हारी आंखें मेरे अस्थिर मन को और अस्थिर कर देंगी। मैं इससे बचना चाहता था। उसका कुछ भी परिणाम हो सकता था। मैं जानता था तुम पर उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी दुसरे तुमसे क्या कहेंगे। फिर भी इस सम्बन्ध में निश्चित था कि तुम्हारे मन में कोई वैसा भाव नहीं आएगा। और मैं यह आशा लिए हुए चला गया कि एक कल ऐसा आएगा जब मैं तुमसे वह सब कह सकूंगा और तुम्हें अपने मन के द्वन्द्व का विश्वास दिला सकूंगा। यह नहीं सोचा कि द्वन्द्व एक ही व्यक्ति तक सीमित नहीं होता, परिवर्तन एक ही दिशा को व्याप्त नहीं करता। इसलिए आज यहां आकर बहुत व्यर्थता का बोध हो रहा है।

लोग सोचते हैं मैंने उस जीवन और वातावरण में रहकर बहुत कुछ लिखा है। परन्तु जातना हूं कि मैंने वहां रहकर कुछ नहीं लिखा। जो कुछ लिखा है वह यहां के जीवन का ही संचय था। कुमार सम्भव की पृष्ठभूमि यह हिमालय है और तपस्विनी उमा तुम हो। मेघदूत के यक्ष

की पीडा मेरी पीडा है और विरह विमर्दिता यक्षिणी तुम हो - यध्यपि
मैंने स्वयं यहां होने और तुम्हें नगर में देखने की कल्पना की ।
अभिज्ञान शाकुन्तल में शकुन्तला के रूप में तुम्हीं मेरे सामने थी । मैंने
जब - जब लिखने के इतिहास को फिर - फिर दोहराया । और जब उससे
हटकर लिखना चाहा, तो रचना प्राणवान् नहीं हुई । रघुवंश में अज का
विलाप मेरी ही वेदना की अभिव्यक्ति है और...

(मल्लिका दोनों हाथों से मुंह छिपा लेती है । कालिदास सहसा बोलते -
बोलते रुक जाता है और क्षण भर उसकी और देखता रहता है ।)
चाहता था, तुम यह सब पढ़ पातीं, परन्तु सूत्र कुछ इस रूप में टूटा था
कि...।

Play: कोर्ट मार्शल

विकास राय (दबी हुई आवाज में बोलना शुरू करता है) सरकारी वकील मेजर पुरी ने ठीक कहा है - हम एक ऐसे समाज में रहते हैं जो कानून और व्यवस्था पर टिका है। और समाज में एक व्यक्ति के विरोध और विद्रोह के लिए कोई स्थान नहीं। बिल्कुल नहीं कोई स्थान। समाज ने, कानून ने, व्यवस्था ने विरोध प्रकट करने के लिए बना रखे हैं रास्ते। मीलों लम्बे रास्ते। इन रास्तों पर चलना शुरू किया जा सकता है। लेकिन प्रश्न तो यह है कि विरोध प्रकट करने के ये रास्ते क્યાं कहीं पहुंचते भी हैं? बिल्कुल नहीं पहुंचते। कभी नहीं पहुंचते। विरोध कोई नाटक नहीं कि अन्तिम अंक, लास्ट एक्ट तक पहुंचने की प्रतीक्षा करे। शक्तिशाली लोगों के विरोध को राजनीतिक विरोध कहा जाता है, जो उन्हें एक ही छलांग में बिठा देता है सत्ता के बिल्कुल पास रखी कुर्सी पर। और कमजोर लोगों का विरोध। इसे विरोध नहीं, विद्रोह का नाम दिया जाता है, जो उन्हें एक ही छलांग में पहुंचा देता है फांसी के तख्ते तक।

जब छोटे-छोटे विरोध लगातार दबा दिए जाएँ, अनसुने-अनदेखे कर दिए जाएँ तो हमेशा एक भयंकर विस्फोट होता है। प्राणघातक विस्फोट।

कानून और संविधान ने सबको बराबर का दर्जा, बराबर का अधिकार दे दिया। लेकिन बड़े आदमी ने छोटे आदमी को, उंचे आदमी ने नीचे आदमी को, यह अधिकार नहीं दिया। बिल्कुल नहीं दिया। जो व्यवस्था, जो समाज जाति-भेद के आधार पर चलेगा, ऊंच-नीच के तराजू में आदमी को तोलेगा, उसकी आयु कभी भी लम्बी नहीं होती। बिल्कुल नहीं होती।

बराबर की बात तो दूर, सोचने के स्तर पर भी हम अपने से छोटों को बराबर का अधिकार देने के लिए तैयार नहीं। बराबर का अधिकार। हम तो आंख उठाकर अपनी ओर देखने का हक तक देने को तैयार नहीं।

इसका कारण। वे सामन्ती प्रवृत्तियां, सोचने का सामन्ती तरीका, फ्यूडल टैंडेंसीज, जिनसे हमें अभी तक आजादी नहीं मिली।

(रुकता हैं। लम्बी सांस लेता है। फिर ऊंची और तेज आवाज में बोलता है)

सरकारी वकील ठीक कहते हैं। सवार रामचन्दर को फांसी की सजा मिलनी ही चाहिए। अपने देश की रक्षा की शपथ लेने के बावजूद उसने कर दिया इनकार एक अफसर की बच्ची की गन्दगी उठाने से। अपने देश की रक्षा की शपथ लेने के बावजूद उसने हराम की सट्ट जैसी साधारण गाली खाने से कर दिया इनकार। अपने देश की रक्षा की शपथ लेने के बावजूद उसने अपने कान, अपनी आंखे बन्द करने से कर दिया इनकार। उसे दंड मिलना चाहिए। मृत्यु-दंड। उसे आर्मी एक्ट 69 तथा इंडियन पीनल कोड की दफा 302 के अनुसार हर हालत में दंड मिलना चाहिए। मृत्यु-दंड। बार-बार मृत्यु-दंड।

SOLILOQUY / DRAMATICS PASSAGE FOR MALE (GUJARATI)

Play: હેમ્લેટ

હેમ્લેટ જીવવું કે મરવું, એ જ છે યક્ષપ્રશ્ન, ગૌરવ અનુભવી શકું ખરો, જો આ બધું મનમાં જ રાખું તો. દુર્ભાગ્યની બે-લગામ બાણવર્ષા અને ગોફણફેંક, કે આપત્તીના મહાસાગર સામે શસ્ત્રો ઉગામીને પ્રતિકાર કરતાં કરતાં પૂરા કરવા બધાં શસ્ત્રો.? મૃત્યું... એટલે પોઢી જવું, વિશેષ કંઈ જ નહીં. અને ઊંઘમાં જ પૂરા કરી દેતાં હોય, મનનાં બધાં ક્લેષ અને શરીરના ભાગે આવેલાં અનેક આઘાતોને. તો એ ઇચ્છાપૂર્તિ જ હશે જે હતી ખેવના અંતની... મરી જવું.. સુઈ જવું. સુઈ જવું કદાચ સ્વપ્ન જોવા માટે... અંહ.. ત્યાં જ તો ડંખે છે.. કારણ નશ્વર દેહ છોડી કાળનિંદ્રામાં સ્વપ્નો કેવા આવશે., આજ વિચારો ફરજ પાડે છે અટકી જવા માટે.. અને તેથી જ આ દુઃખદ જીવન દિર્ઘાયુષી બને છે. નહીં તો, આ ઐહીકજીવનના ચાબખા, ગર્વીઓનાં ઉપહાસ, અત્યાચારીઓનો અત્યાચાર, પ્રેમ છિત્કારની પીડા, ન્યાયનો વિલંબ, અધિકારીઓની તુમાખી અને અપમાનજનક વર્તણૂંક સહન કરી લે છે ગુણવાન, મળે જે કુ-પાત્ર થકી, આ બધું સહન કરી શા માટે જીવતાં રહેવું? જો કટારનાં એક ઘાથી આયુષ્યનું ઋણ ચૂકવી શકાતું હોય, તો શા માટે કણસતા ને પરસેવો વહાવતાં આ કંટાળાજનક જીવનનો ભાર વેઠવો? જ્યારે એને મૃત્યુ પછીની બીક જ ના હોય તો? એ અણગમતો પ્રદેશ, જ્યાં પહોંચ્યાં બાદ કોઈ પાછું નથી ફરતું, એ કલ્પના માત્રથી જ મગજ બહેર મારી જાય છે. ને વિવિશ કરે છે આપણને, જેવું છે તેવું દુઃખદ જીવન સહન કરવા માટે... ને નકારે છે જે અજાણ્યું છે એને શોધવા માટે... આવી રીતે જ વિવેકબુદ્ધિ બિકણ બનાવી દે છે અમારા જેવાને. આવી જ રીતે ધસમસતાં લોહી જેવા નિર્ધારો ઓલવાઈ જાય છે. વિચારોના ધુંધળા ધુમ્મસમાં. અને વિષણ્ણતાના આવરણોથી ફિક્કા પડી જાય છે. તેથી જ ઉત્તુંગ સાહસી યોજનાઓ ધરાશાયી થઈ સમેટાઈ જાય છે સ્વયંમાં.. કાર્યમાં રૂપાંતરીત થયા વિના જ, વિલાઈ જાય છે. ને રહી જાય છે કાર્યનો વિચાર, મનમાં ને મનમાં જ..... પણ શાંત....

Play: શર્વિલક

શર્વિલક મદનિકા મન મત્ત કરી રહી,
હૃદય એક બની અભિલાષ એ
સકલ તન્મય વૃત્તિ વિલાસતી
અફૂલ ઊર્મિ-નિવારણ યત્ન સૌ !
વિરહિણી મુખકાન્તિ તવ સ્મરી,
સ્મર તણો થઈ દાસ જ હું રહ્યો,
સ્મૃતિ રહે નહીં ધર્મ અધર્મની,
સ્પૃહણ એક જ તું પુરુષાર્થની !

મદનિકાને મારી કરું. વસંતસેનાને એનું મૂલ્ય ચૂકવી દઉં. માટું સર્વ ધન કુમાર આર્યકની સેના એકઠી કરવામાં ખપી ગયું. એ અર્થે પણ મારે અધિક ધન જોઈએ. એક સાથે મારે બે લક્ષ્ય વીંધવાનાં છે. વીંધાશે? બંને નહીં ચૂકું.. અથવા એક વીંધું અને બીજું ચૂકું તો? અરે, તો તો મહા અનર્થ. મદનિકા મેળવવા જતાં કુમાર આર્યક આપત્તિમાં આવે તો મદનિકા સાથે હું સુખે જીવી શકું? પણ કુમાર આર્યકને અવન્તીનાથ કરવા હું મદનિકાની ઉપેક્ષા કરું તો? મારે કરવી જ જોઈએ. પણ મદનિકા વિના માટું ચિત્ત વ્યગ્ર રહી કશામાં સ્પષ્ટ વિચારો કરી શકતું નથી. નિર્ણયો થતા નથી, અથવા સાચા થતા નથી. દર્દુરકને કુમાર પાસે મોકલ્યો અને હું ન ગયો એ નિર્ણયદોષ નહીં? જરૂર, કુટિલમતિ ભરતરોહતકને એ પહોંચી ન શકે તો? (વિચાર - મઝનતાનું મૌન) પણ રાજપરિવર્ત માટે ઉજ્જયિની તો સંભાળવાની ને? હું ઉજ્જયિની સંભાળવા ઉજ્જયિનીમાં રહ્યો કે મદનિકા અર્થે? જવા દે બ્રાહ્મણ.. તારા તર્કો અને સંશયો.. માટું એક લક્ષ્ય વીંધાય કે બીજું વીંધાય, પણ બંને કાજે મારે ધનની આવશ્યકતા છે. આ ઉજ્જયિનીના ધનિકો રાજપરિવર્ત અર્થે મને કાંઈ ધન આપે? આપે એવી ખ્યાતિ એક ચારુદત્તની છે. મારા દુર્ભાગ્યે એ નિર્ધન થયા. નહિં તો ક્યારનોયે પરિચય સાધ્યો હોત.. તો પછી ધનિકોનાં ઘર ફાડીને જ મારે ધન મેળવવું રહ્યું. ધનિકોની પોળમાં તો હું આવી પહોંચ્યો છું, પણ ઉજ્જયિનીના આ ભાગથી

હું અપરિચિત છું. તો સાવધ થઈને જાઉં.. (આકાશ તરફ જોઈ) ચંદ્રમા તો અસ્ત પામી ગયો. આ અંધકાર હવે મારું રક્ષણ કરશે..(વાડામાં બાકોરું પાડી) વૃક્ષવાટિકાનો ઝાંપો તોડી દાખલ તો થયો, હવે ચતુઃશાલ તરફ જાઉં... ચૌરકર્મ કરવાનું પણ મારે આવ્યું! રાજપરિવર્ત કરવો હોય ત્યારે શું ધર્મ અને શું અધર્મ? ભગવાન્ બૃહસ્પતિ તો ઉપદેશે છે કે ધર્મ - અધર્મ રાજદંડ પછી જ આવે. અને મદનનો આવેશ પણ આ બધું ક્યાં વિચારવા દે છે? આશ્ચર્ય છે! ધર્મ - અધર્મનું નિયંત્રણ ક્યાં અને ક્યાં નહીં? હવે તો જે કરવા નીકળ્યો છું તે પુરું કરું. નમું ત્યારે આ કલાના દેવો કહેતા આદિપુરુષોને અને આચાર્યોને -

નમો વરદાય કુમારકાર્તિકેયાય, નમઃ કનકશક્ત્યે બ્રહ્મણ્યદેવાય દેવવ્રતાય,
નમો ભાસ્કરનન્દિને, નમો યોગાચાર્યામા

યોગાચાર્યનો હું અગ્રશિષ્ય (વિચારમાં આજુબાજુ જોતો)

લોભી ધની સાધુજનાવમાની,

વેપારમાં જે અતિકર્કશો ને,

એવું મળે જો ઘર વાણિયાનું,

લાગે મને ના મન દુઃખ કાંઈ,

ત્યારે કયા પ્રકારનો છેદ પાડું? ચૌરશાસ્ત્રમાં તો અનેક આકારો કહ્યાં છે.

(નિરીક્ષણ કરી) આ પાકી ઈંટોમાં પૂર્ણકુંભ શોભશે. માપ લઉં. (પોતાની

થેલીમાં સૂત્ર શોધે છે. મળતું નથી) માપવાનું સૂત્ર તો વીસરી ગયો. (જનોઈ

જોતો અને કાઢતો) કાંઈ નહીં, દિવસે જે બ્રહ્મસૂત્ર છે તે રાત્રિએ કર્ણસૂત્ર

બનશે. (પૂર્ણકુંભના આકારનો છેદ પાડે છે અ દાખલ થાય છે. ચારુદત્તના

ખંડમાં આમતેમ જોઈ) અરે અહીં તો મૃદંગ, દુર્દુર, પણવ, વીણા, વંશ અને

પુસ્તકો પડ્યાં છે. આ તો કોઈ નાટ્યાચાર્યનું ઘર દેખાય છે. મોટું ભવન જોઈ

પ્રવેશ કર્યો. તો શું આ દરિદ્ર છે કે ધન ગુપ્ત રાખ્યું છે? જોઉં.. (બીજ નાંખે)

આ બીજ ક્યાંય ફેલાતું નથી. દરિદ્ર જ છે. જાઉં ત્યારે.

ગયો છે વૈભવ તોયે, જન્મસ્થાન અપેક્ષયા,

વેચવા કાળ છે તોયે, રાખે છે ઘર પ્રેમથી... (જવા માંડે)

Play: કુમારની અગાશી

કુમાર જુઠા જુઠા બકવાસના પત્રો (એક ખોલી વાંચે છે) ‘મારી જીલ છે તું? કે મારા હોઠ? મારી જીલથીય કોમળ, મારા હોઠથીય મસૂણ, મારા કુમાર... મારા અક્ષુણ્ણ કુમાર..’ (ફાડે છે બીજો પત્ર) ‘એક વાર કહે કે તું મારો છે, મારો એકલીનો છે..!’ (ફાડે છે. હવામાં ઉડાડે છે ત્રીજો) ‘આખી રાત અને આખી સવાર હું ઉદાસ રહી કુમાર, તેં કેમ એવું બધું લખ્યું હતું? કુમાર, કુમાર, મારા કુમાર, મને માફ કર, મને માફ કર, મને માફ કર...’ (ફાડે છે. કુમાર સહેજ નશામાં છે.)

નાઈન એઈટ ફોર સેવન એઈટ ટુ ફાઈવ જીરો સેવન... મીઠા મધુરા પત્રો, વાસનાથી ભરપૂર પત્રો, લખેલા શબ્દો અક્ષરો અને અક્ષરોના સંકેત, એના નાના મોટા વળાંકે કોઈનું મન જાણવું, કોઈનો પ્રેમ પામવો વ્યર્થ છે. વ્યર્થ છે બધું. આ એક મોટું ષડયંત્ર છે. એક જણ બીજા જણને કંઈ કહી શકતું નથી, એક જણ બીજા જણને ક્યારેય સાંભળી શકતું નથી.

(ઝનૂનપૂર્વક તિક્ત નિરાશાથી એક પછી એક પત્રો ફાડે છે. અને હાથમાં એના ટુકડા ઉડાડે છે.)

મેં એક વાર તને લખ્યું હતું, કે તારો મીઠો પત્ર મને એટલો બધો ગમ્યો હતો કે હું એને બીજી વાર વાંચી પણ ન શક્યો. મેં એના ઝીણા ઝીણા ટુકડા કરી આકાશમાં ઉછાળી દીધા અને મારી બીડાતી આંખો ઉપર એ ફૂલની પાંખડીઓની જેમ વેરાઈ ગયા, મારા વાળમાં તારી આંગળીઓની જેમ સંતાઈ ગયા, મારા ગળે, છાતી, હાથ અને પથારી ઉપર ગુલમહોરની બિછાતની જેમ ફેલાઈ ગયા. હું જાગ્યો ત્યારે મારી આસપાસ, મારા હોઠ ઉપર, માથા ઉપર, મારા શરીરની નીચે તારા પત્રના ઝીણા ઝીણા અંશ મને વળગી રહ્યા હતા. એ એ વખતનું સત્ય હતું. (અગાશીની પાસે આવી ઊભો રહે છે. નેપથ્યમાં ઢોલનો - માત્ર ઢોલનો, નરભક્ષી નાયના તાલનો અવાજ, અને કુમાર ઊંઘો વળી અગાશીની પાળને બહારની બાજુથી વળગી ઝૂલે છે - એક નાટકનો અંશ બોલે છે - રિસાઈટ કરે છે. નિશાનાં અદ્દહાસ્યો, ત્રુટક વાતચીતો અને પત્રાંશો સાથે સાથે સંભળાયા કરે. આ આખી એકોક્તિ દરમિયાન)

(નાટકીય રીતે) બોલો, બોલો દિશાઓ, વૃક્ષલતાઓ, નિઃશબ્દ કેમ છો? ચિત્કાર કરો માતા ભગવતી, ચિત્કાર કરો, ક્યાં ગયો એ કાક - કોલાહલ? કોણે રોક્યાં છે માનવ સ્વરોનાં વાયુ આંદોલનો? કોણે જકડી લીધાં છે મારાં ગાત્રો? મારી વાત કેમ કોઈ સમજતું નથી? મારાં ચક્ષુઓમાં કેમ કોઈને પરિચિતની આભા દેખાતી નથી? કેમ મારા હાથ હવામાં અવિરામ વીંઝાય છે? (અદ્વહાસ્ય)

કેમ મારી પ્રાણપછાડોથી ધરતીની ધૂળ ક્ષિતિજોને ઢાંકી દેથી નથી? કેમ કેમ કેમ? કેમ એક એક જણ આકાશના તારાઓની જેમ પરસ્પરથી યોજનોના અંતરે એકાકી બની તરફડે છે? કોનો શાપ છે? (અદ્વહાસ્ય)

કેમ વિશ્વ આખું સ્પર્શબહેરું બની કોઈને કોઈનો હાથ અડકવા દેતું નથી? કેમ મારા કાન લતાઓનો પર્ણમર્મર ઝીલી શકતા નથી? મારી જિહ્વા ઉપર કેમ પ્રેતનાં હાડપીંજરો જેવી પરતો બાઝી ગઈ છે? કેમ મારી આંખો માત્ર મારી જ પ્રતિચ્છાયા જુએ છે, કેમ મારાં ચરણ ચાલતાં નથી? કેમ મારા હૃદયપિંડમાં રક્તનો સંચાર નથી કેમ? કેમ?

(જોરથી) કોણે મને મારા અસ્તિત્વનો બંદી બનાવી આ ધોર જંગલોના ઘટ્ટ અંધકરામાં આજન્મ દાટી દીધો છે. કોણે?

POEMS FOR MALE AND FEMALE

कृष्ण की चेतावनी / रामधारी सिंह "दिनकर"

वर्षों तक वन में घूम-घूम,
बाधा-विघ्नों को चूम-चूम,
सह धूप-घाम, पानी-पत्थर,
पांडव आये कुछ और निखर।
सौभाग्य न सब दिन सोता है,
देखें, आगे क्या होता है।

मैत्री की राह बताने को,
सबको सुमार्ग पर लाने को,
दुर्योधन को समझाने को,
भीषण विध्वंस बचाने को,
भगवान् हस्तिनापुर आये,
पांडव का संदेशा लाये।

‘दो न्याय अगर तो आधा दो,
पर, इसमें भी यदि बाधा हो,
तो दे दो केवल पाँच ग्राम,
रक्खो अपनी धरती तमाम।
हम वहीं खुशी से खायेंगे,
परिजन पर असि न उठायेंगे!

दुर्योधन वह भी दे ना सका,
आशीष समाज की ले न सका,
उलटे, हरि को बाँधने चला,
जो था असाध्य, साधने चला।
जब नाश मनुज पर छाता है,
पहले विवेक मर जाता है।

हरि ने भीषण हुंकार किया,
अपना स्वरूप-विस्तार किया,
डगमग-डगमग दिग्गज डोले,
भगवान् कुपित होकर बोले-
'जंजीर बढ़ा कर साध मुझे,
हाँ, हाँ दुर्योधन! बाँध मुझे।

यह देख, गगन मुझमें लय है,
यह देख, पवन मुझमें लय है,
मुझमें विलीन झंकार सकल,
मुझमें लय है संसार सकल।
अमरत्व फूलता है मुझमें,
संहार झूलता है मुझमें।

'उदयाचल मेरा दीप्त भाल,
भूमंडल वक्षस्थल विशाल,
भुज परिधि-बन्ध को घेरे हैं,

मैनाक-मेरु पग मेरे हैं।
दिपते जो ग्रह नक्षत्र निकर,
सब हैं मेरे मुख के अन्दर।

‘दृग हों तो दृश्य अकाण्ड देख,
मुझमें सारा ब्रह्माण्ड देख,
चर-अचर जीव, जग, क्षर-अक्षर,
नश्वर मनुष्य सुरजाति अमर।
शत कोटि सूर्य, शत कोटि चन्द्र,
शत कोटि सरित, सर, सिन्धु मन्द्र।

‘शत कोटि विष्णु, ब्रह्मा, महेश,
शत कोटि विष्णु जलपति, धनेश,
शत कोटि रुद्र, शत कोटि काल,
शत कोटि दण्डधर लोकपाल।
जञ्जीर बढ़ाकर साध इन्हें,
हाँ-हाँ दुर्योधन! बाँध इन्हें।

‘भूलोक, अतल, पाताल देख,
गत और अनागत काल देख,
यह देख जगत का आदि-सृजन,
यह देख, महाभारत का रण,
मृतकों से पटी हुई भू है,
पहचान, इसमें कहाँ तू है।

‘अम्बर में कुन्तल-जाल देख,
पद के नीचे पाताल देख,
मुट्ठी में तीनों काल देख,
मेरा स्वरूप विकराल देख।
सब जन्म मुझी से पाते हैं,
फिर लौट मुझी में आते हैं।

‘जिह्वा से कढ़ती ज्वाल सघन,
साँसों में पाता जन्म पवन,
पड़ जाती मेरी दृष्टि जिधर,
हँसने लगती है सृष्टि उधर!
मैं जभी मूँदता हूँ लोचन,
छा जाता चारों ओर मरण।

‘बाँधने मुझे तो आया है,
जंजीर बड़ी क्या लाया है?
यदि मुझे बाँधना चाहे मन,
पहले तो बाँध अनन्त गगन।
सूने को साध न सकता है,
वह मुझे बाँध कब सकता है?

‘हित-वचन नहीं तूने माना,
मैत्री का मूल्य न पहचाना,
तो ले, मैं भी अब जाता हूँ,
अन्तिम संकल्प सुनाता हूँ।

याचना नहीं, अब रण होगा,
जीवन-जय या कि मरण होगा।

‘टकरायेंगे नक्षत्र-निकर,
बरसेगी भू पर वह्नि प्रखर,
फण शेषनाग का डोलेगा,
विकराल काल मुँह खोलेगा।
दुर्योधन! रण ऐसा होगा।
फिर कभी नहीं जैसा होगा।

‘भाई पर भाई टूटेंगे,
विष-बाण बूँद-से छूटेंगे,
वायस-शृगाल सुख लूटेंगे,
सौभाग्य मनुज के फूटेंगे।
आखिर तू भूशायी होगा,
हिंसा का पर, दायी होगा।’

थी सभा सन्न, सब लोग डरे,
चुप थे या थे बेहोश पड़े।
केवल दो नर ना अघाते थे,
धृतराष्ट्र-विदुर सुख पाते थे।
कर जोड़ खड़े प्रमुदित,
निर्भय, दोनों पुकारते थे ‘जय-जय’!

अज्ञात देश से आना / भगवतीचरण वर्मा

मैं कब से ढूँढ़ रहा हूँ
अपने प्रकाश की रेखा
तम के तट पर अंकित है
निःसीम नियति का लेखा

देने वाले को अब तक
मैं देख नहीं पाया हूँ,
पर पल भर सुख भी देखा
फिर पल भर दुख भी देखा।

किस का आलोक गगन से
रवि शशि उडुगन बिखराते?
किस अंधकार को लेकर
काले बादल घिर आते?

उस चित्रकार को अब तक
मैं देख नहीं पाया हूँ,
पर देखा है चित्रों को
बन-बनकर मिट-मिट जाते।

फिर उठना, फिर गिर पड़ना
आशा है, वहीं निराशा

क्या आदि-अन्त संसृति का
अभिलाषा ही अभिलाषा?

अज्ञात देश से आना,
अज्ञात देश को जाना,
अज्ञात अरे क्या इतनी
है हम सब की परिभाषा?

पल-भर परिचित वन-उपवन,
परिचित है जग का प्रति कन,
फिर पल में वहीं अपरिचित
हम-तुम, सुख-सुषमा, जीवन।

है क्या रहस्य बनने में?
है कौन सत्य मिटने में?
मेरे प्रकाश दिखला दो
मेरा भूला अपनापन।

आधुनिक जगत की स्पर्धपूर्ण नुमाइश में / हरिवंशराय बच्चन

आधुनिक जगत की स्पर्धपूर्ण नुमाइश में

हैं आज दिखावे पर मानवता की किस्में,

है भरा हुआ आँखों में कौतूहल-विस्मय,

देखें इनमें

कहलाया जाता

कौन मीर?

दुनिया के तानाशाहों का सर्वोच्च शिखर,

यह फ्रैंको, टोजो, मसोलिनी पर हर हिटलर,

यह रूज़वेल्ट, यह डूमन, जिसकी चेष्टा पर

हीरोशीमा, नागासाकी पर ढहा क्रहर,

यह है चियांग, जापान गर्व को मर्दित कर

जो अर्द्ध चीन के साथ आज करता आज संगर,

यह भीमकाय चर्चिल है जिसको लगी फ़िकर

इंगलिस्तानी साम्राज्य रहा है बिगड़-बिखर,

यह अफ्रीका का स्मट्स खबर है जिसे नहीं,

क्या होता, गोरे-काले चमड़े के अंदर,

यह स्टलिनग्राड

का स्टलिन लौह का

ठोस बोरा।

जग के इस महाप्रदर्शन के नम्रता सहित
संपूर्ण सभ्यता भारतीय, सारी संस्कृति
के युग-युग की साधना-तपस्या की परिणति,
हम में जो कुछ सर्वोत्तम है उसका प्रतिनिधि

हम लाए हैं
अपना बूढ़ा-
नंगा फ़कीर।

જટાયુ / સિતાંશુ યશશ્ચંદ્ર મહેતા

નગર અયોધ્યા ઉત્તરે, ને દખ્ખણ નગરી લંક
વચ્ચે સદસદ્જ્યોત વિહોણું વન પથરાયું રંક.

ધવલ ધર્મજ્યોતિ, અધર્મનો જ્યોતિ રાતોયોળ
વનમાં લીલો અંધકાર, વનવાસી ખાંખાંખોળ.

શબર વાંદરાં રીંછ હંસ વળી હરણ સાપ ખિસકોલાં
શુક-પોપટ સસલાં શિયાળ વડુ મોર વાઘ ને હોલાં

વનનો લીલો અંધકાર જેમ કહે તેમ સૌ કરે
ચરે, ફરે, રતિ કરે, ગર્ભને ધરે, અવતરે, મરે.

દર્પણ સમ જલ હોય તોય નવ કોઈ જુએ નિજ મુખ
બસ, તરસ લાગતાં અનુભવે પાણી પીધાનું સુખ.

જેમ આવે તેમ જીવ્યા કરે કેં વધુ ન જાણે રંક :
ક્યાં ઉપર અયોધ્યા ઉત્તરે, ક્યાં દૂર દખ્ખણે લંક.

૨.

વનમાં વિવિધ વનસ્પતિ, એની નોખી નોખી મઝા
વિવિધ રસોની લ્હાણ લો, તો એમાં નહીં પાપ નહીં સજા.

પોપટ શોધે મરચીને, મધ પતંગિયાની ગોત
આંબો આપે કેરી, દેહની ડાળો ફળતી મોત.

કેરી ચાખે કોકિલા અને જઈ ઘટા સંતાય
મૃત્યુફળનાં ભોગી ગીધો બપોરમાં દેખાય.

જુઓ તો જાણે વગર વિચારે બેઠાં રહે બહુ કાળ
જીવનમરણ વચ્ચેની રેખાની પકડીને ડાળ.

ડોક ફરે ડાબી, જમણી : પણ એમની એમ જ કાય
(જાણે) એક ને બીજી બાજુ વચ્ચે ભેદ નહીં પકડાય.

જેમના ભારેખમ દેહોને માંડ ઊંચકે વાયુ
એવાં ગીધોની વચ્ચે એક ગીધ છે : નામ જટાયુ.

૩ .

આમ તો બીજું કંઈ નહીં, પણ એને બહુ ઊડવાની ટેવ
પહોર ચડ્યો ના ચડ્યો જટાયુ ચડ્યો જુઓ તતખેવ.

ઊંચે ઊંચે જાય ને આઘે આઘે જુએ વનમાં
(ત્યાં) ઊના વાયુ વચ્ચે એને થયા કરે કંઈ મનમાં.

ઊની ઊની હવા ને જાણે હૂંફાળી એકલતા
કિશોર પંખી એ ઊડે ને એને વિચાર આવે ભળતા.

વિચાર આવે અવનવા, એ ગોળ ગોળ મૂંઝાય
ને ઊની ઊની એકલતામાં અધ્ધર ચડતો જાય.

જનમથી જ જે ગીધ છે એની આમે ઝીણી આંખ
એમાં પાછી ઉમેરાઈ આ સતપત કરતી પાંખ.

માતા પૂછે બાપને : આનું શુંય થશે, તમે કેવ
આમ તો બીજું કંઈ નહીં પણ આને બહુ ઊડવાની ટેવ.

૪.

ઊડતાં ઊડતાં વર્ષો વીત્યાં ને હજી ઊડે એ ખગ
પણ ભોળું છે એ પંખીડું ને આ વન તો છે મોટો ઠગ !

(જ્યમ) અધરાધરમાં જાય જટાયુ સહજ ભાવથી સાવ
(ત્યમ) જુએ તો નીચે વધ્યે જાય છે વનનો પણ ઘેરાવ.

હાથવા ઊંચો ઊડે જટાયુ તો વાંસવા ઠેકે વન
તુલસી તગર તમાલ તાલ તરુ જોજનનાં જોજન.

ને એય ઠીક છે, વન તો છે આ ભોળિયાભાઈની મા :
લીલોછમ અંધાર જે દેખાડે તે દેખીએ, ભા !

હસીખુશીને રહો ને ભૂલી જતા ન પેલી શરત,
કે વનનાં વાસી, વનના છેડા પાર દેખના મત.

ને વૃદ્ધ હાથે પકડી બપોરના
તું હોય રામાયણ વાંચતી સખી
ઝીણાં કરી લોચન બે નમીને;
ને વિપ્રલંભે કૃશકાય આકુલા
કારુણ્યમૂર્તિ અહ દગ્ધ જાનકી
ઊભી રહી હો તુજ નેત્રની નીચે
પૃષ્ઠો પરે જીર્ણ; જરાક રમ્ય
મોતી ઝઝૂમે ચખ વૃદ્ધમાં;
કહું ?

ત્યારે અનુજ્ઞા લઈ ઇન્દ્રની સખી
પતંગિયું એક બની સુવર્ણનું
આવીશ પૃષ્ઠો પર બેસવા ક્ષણ.

૨

ઊંચી તમારી પ્રિય પુષ્ટ કાયા
નાહ્યા પછી રોજની જેમ હાથમાં
પ્રવેશશે છાબ લઈ, અજસ્ર
મોંથી હશે મંત્ર ઝરંત સિક્ત
નમેલ બે સ્કંધ પરે પ્રશસ્ત

ઢલ્યો હશે આતપ સે'જ હે સખે
વિશ્રબ્ધ મારા મુખ શો; ધીમે ધીમે
આવી અહીં આંગણમાં કરેણની
ડાળી પરે દક્ષિણ હાથ દીર્ઘ
લંબાવશો; કંપતી અંગુલિ થકી
થશે જરી સ્પર્શ ત્યહીં જ હું પ્રિયે
ગરીશ (રાતું ફૂલ) રોજ છાબમાં.

અંધેર નગરી / દલપતરામ

પૂરી એક અંધેરી ને ગંડુ રાજા,
ટકે શેર ભાજી ને ટકે શેર ખાજાં;
બધી ચીજ વેચાય ત્યાં ભાવ એકે,
કદી સારી બૂરી ન વેચે વિવેકે.

ત્યાં જઈ ચઢ્યા બે ગુરુ એક ચેલો,
ગયો ગામમાં માગવા શિષ્ય પેલો;
લીધી સુખડી હાટથી આપી આટો,
ગુરુ પાસ જઈને કહે, "ખૂબ ખાટ્યો."

ગુરુજી કહે, "રાત રહેવું ન આંહી,
સહુ એક ભાવે ખપે ચીજ જ્યાંહી;
હશે ચોરને શાહનો ન્યાય એકે,
નહી હોય શિક્ષા ગુનાની વિવેકે...

ન એ વસ્તીમાં એક વાસો વસીજે,
ચલો સદ્ય ચેલા જવું ગામ બીજે."
કહે શિષ્ય, "ખાવા પીવા ખૂબ આંહી,
તજી તેહ હું તો ન આવીશ ક્યાંહી."

ગુરુએ બહુ બોધ દીધો જ ખાસો,

"નહીં યોગ્ય આંહી રહે રાતવાસો."

ન માની કશી વાત તે શિષ્ય જ્યારે,
ગુરુજી તજીને ગયા ગામ ત્યારે.

રહ્યા શિષ્યજી તો ત્યહાં દિન ઝાઝા,
બહુ ખાઈપીને થયા ખૂબ તાજા;
પછીથી થયા તેહના હાલ કેવા,
કહું છું હવે હું સુણો સદ્ય તેવા.

તસ્કર ખાતર પાડવા, ગયા વણિકને ઝાર;
તહાં ભીત તૂટી પડી, ચોર દબાયા ચાર.
માત પ્રભાતે ચોરની, ગઈ નૃપને ફરિયાદ;
શૂળી ઠરાવી શેઠને, ડોશીની સૂણી દાદ.

"એવું ઘર કેવું ચણ્યું, ખૂન થયાં તે ઠાર;
રાતે ખાતર ખોદતાં, ચોર દબાયા ચાર."
વણિક કહે, "કડિયા તણો એમાં વાંક અપાર;
ખરેખરી એમાં નથી, મારો ખોડ લગાર."

કડિયાને શૂળી ઠરી, વણિક બચ્યો તે વાર;
ચૂકે ગારો કરનારની, કડિયે કરી ઉચ્ચાર.
ગારો કરનાર કહે, "પાણી થયું વિશેષ;
એ તો ચૂક પખાલીની, મારી ચૂક ન લેશ"

પુરપતી કહે પખલીને, "જો તું શૂળીએ જાય,
આજ પછી આ ગામમાં, એવા ગુના ન થાય."
"મુલ્લાં નીસર્યા મારગે, મેં જોયુ તે દિશ;
પાણી અધિક તેથી પડ્યું, રાજા છાંડો રીસ."

મુલ્લાંજીને મારવા, કરી એવો નિરધાર;
શૂળી પાસે લઈ ગયા, મુલ્લાંને તે વાર.
ફળ જાડું શૂળી તણું, મુલ્લાં પાતળે અંગ;
એવી હકીકત ચાકરે, જઈ કહી ભૂપ પ્રસંગ.

ભૂપ કહે, "શું હરઘડી આવી પૂછો કોઈ;
શોધી ચઢાવો શૂળીએ, જાડા નરને જોઈ."
જોતાં જોતાં એ જડ્યો, જોગી જાડે અંગ;
બહુ દિન ખાઈને બન્યો, રાતે માતે રંગ

શિષ્ય મુદત માગી ગયો ગુરુ પાસે પસ્તાય;
ગુરુએ આવી ઉગારિયો, અદભૂત કરી ઉપાય.
જોગી શૂળી પાસ જઈ કહે, "ભૂપ સુણ કાન,
આ અવસર શૂળીએ ચઢે, વેગે મળે વિમાન."

ચેલો બોલ્યો, "હું ચઢું" ને ગુરુ કહે, "હું આપ;"
અધિપતિ કહે, "ચઢીએ અમો, પૂરણ મળે પ્રતાપ."

ગુરુ ચેલાને ગામથી, પહોંચાડ્યા ગાઉ પાંચ;
રાજા શૂળી પર રહ્યો, અંગે વેઠી આંચ.

SOLILOQUY / DRAMATICS PASSAGE FOR FEMALE (HINDI)

Play: आषाढ का एक दिन

मल्लिका नहीं, तुम काशी नहीं गये। तुमने संन्या नहीं लिया। मैंने इसलिए तुमसे यहां से जाने के लिए नहीं कहा था। मैंने इसलिए भी नहीं कहा था कि तुम जाकर कहीं का शासन-भार संभालो। फिर भी जब तुमने ऐसा किया, मैंने तुम्हें शुभ-कामनाएँ दीं - यद्यपि प्रत्यक्ष तुमने वे शुभ-कामनाएँ ग्रहण नहीं की।

(ग्रन्थ को हाथों में लिये जैसे अभियोगपूर्ण द्रष्टि से उसे देखती है)

मैं यद्यपि तुम्हारे जीवन में नहीं रही, परन्तु तुम मेरे जीवन में सदा बने रहे हो। मैंने कभी तुम्हें अपने से दूर नहीं होने दिया। तुम रचना करते रहे, और मैं समझती रही कि मैं सार्थक हूँ मेरे जीवन की भी कुछ उपलब्धि है।

(ग्रन्थ को घुटनों पर रख लेती है)

और आज तुम मेरे जीवन को इस तरह निरर्थक कर दोगे?

(ग्रन्थ को आसन पर रखकर उद्विग्न द्रष्टि से उसकी ओर देखती रहती है)

तुम जीवन से तटस्थ हो सकते हो, परन्तु मैं तो अब तटस्थ नहीं हो सकती। क्या जीवन को तुम मेरी द्रष्टि से देख सकते हो? जानते हो मेरे जीवन के ये वर्ष कैसे व्यतीत हुए हैं? मैंने क्या -क्या देखा है? क्या से क्या हुई हूँ?

(उठकर अन्दर का किवाड खोल देती है और पालने की और संकेत करती है।)

इस जीव को देखते हो? पहचान सकते हो? यह मल्लिका है जो धीरे - धीरे बड़ी हो रही है और मां के स्थान पर अब मैं इसकी देख-भाल करती हूँ। यह मेरे अभाव की सन्तान है। जो भाव तुम थे, वह दूसरा नहीं हो सका, परन्तु अभाव के कोष्ठ में किसी दूसरे की जाने कितनी - कितनी आकृतियाँ हैं। जानते हो मैंने अपना नाम खोकर एक विशेषण उपार्जित किया है और अब मैं अपनी द्रष्टि में नाम नहीं, केवल विशेषण हूँ?

(किवाड बन्द करके आसन की ओर लोट पड़ती है)

व्यवसायी कहते थे, उज्जयिनी में अपवाद है तुम्हारा बहुत-सा समय वारांगणाओं के सहवास में व्यतीत होता है। परन्तु तुमने वारांगणा का यह रूप भी देखा है? आज तुम मुझे पहचान सकते हो? मैं अज भी उसी तरह पर्वत शिखर पर जाकर मेघ-मालाओं को देखती हूँ। उसी तरह ऋतुसंहार और मेघदूत की पंक्तियाँ पढ़ती हूँ। मैंने अपने भाव के कोष्ठ को रिक्त नहीं होने दिया। परन्तु मेरे अभाव की पीड़ा का अनुमान लगा सकते हो?

(और ग्रंथ हाथों में उठा लेती है)

नहीं, तुम अनुमान नहीं लगा सकते। तुमने लिखा था कि एक दोष गुणों के समूह में उसी तरह छिप जाता है, जैसे चांद की किरणों में कलंक, परन्तु

दारिद्र्य नहीं छिपता। सौ-सौ गुणों में भी नहीं छिपता। नहीं, छिपता ही नहीं, सौ-सौ गुणों को छा लेता है - एक एक करके नष्ट कर देता है।

(बोलती बोलती और अन्तर्मुख हो जाती है)

परन्तु मैंने यह सब सह लिया। इसलिए कि मैं टूटकर भी अनुभव करती रही कि तुम बन रहे हो। क्योंकि मैं अपने को अपने में न देखकर तुममें देखती थी। और आज यह सुन रही हूँ कि तुम सब छोड़कर सन्यास ले रहे हो? तटस्थ हो रहे हो? उदासीन ? मुझे मेरी सत्ता के बोध से इस तरह वंचित कर दोगे?

(बिजली कांपती है और मेघ गर्जन सुनायी देता है)

वही आषाढ का दिन है। उसी तरह मेघ गरज रहे हैं। वैसे ही वर्षा हो रही है। वही मैं हूँ। उसी घर में हूँ। किन्तु...

Play: अन्धा युग

गान्धारी अस्थि - शेष?
तो क्या वह पड़ा है
कंकाल मेरे पुत्र का?
(हृदय विदारक स्वर में)
तो, वह पड़ा है कंकाल मेरे पुत्र का
किया है यह सब कुछ कृष्ण
तुमने किया है यह
सुनो !
आज तुम भी सुनो
मैं तपस्विनी गान्धारी
अपने सारे जीवन के पुण्यों का
अपने सारे पिछले जन्मों के पुण्यों का
बल लेकर कहती हूँ
कृष्ण सुनो !
तुम यदि चाहते तो रुक सकता था युद्ध यह
मैंने प्रसव नहीं किया था कंकाल वह
इंगित पर तुम्हारे ही भीम ने अधर्म किया
क्यों नहीं तुमने वह शाप दिया भीम को
जो तुमने दिया निरपराध अश्वस्थामा को
तुमने किया है प्रभुता का दुरुपयोग
यदि मेरी सेवा में बल है
संचित तप में धर्म है
तो सुनो कृष्ण!
प्रभु हो या परात्पर हो
कुछ भी हो
सारा तुम्हारा वंश
इसी तरह पागल कुत्तों की तरह
एक - दूसरे को परस्पर फाड़ खायेगा
तुम खुद उनका विनाश करके कई वर्षों बाद
किसी घने जंगल में
साधारण व्याध के हाथों मारे जाओगे
प्रभु हो
पर मारे जाओगे पशुओं की तरह।

Play: खामोश अदालत जारी है

बेणारे

हां बहुत कुछ कहना है मुझे। (अंगड़ाई लेकर) कितने बरस बित गए, कुछ कहा ही नहीं। क्षण आए, चले गए। एक के बाद एक तूफान आए, मगर कंठ में ही घुटकर रह गए। छाती में प्राणान्तक आक्रोश उठे, किन्तु हर बार होंठों को कसकर भींच लिया। लगा कि कोई भी इसे जान नहीं सकेगा, कोई भी समझ नहीं सकेगा इसे। जिस समय शब्दों का प्रचंड ज्वार उमड़ता हुआ आकर होंठों से टकराने लगता है तो लगता है वह मेरे आसपास रहेने वाले आदमी कितने नासमझ, पागल और बचकाने हैं। सभी.. वह भी, जो नितान्त अपना है। दिल करता है उन पर भी जी भर हंसती रहूं। बस, हंसती ही रहूं। और तब मने फूट-फूटकर रो उठता है और इतना रोता कि आंते ऐंठने लगती है। लगता कि हृदय फट जाए तो अच्छा हो। जिन्दगी कितनी सारहीन लगती। एक गहरा निःश्वास भरकर मगर प्राण नहीं जाते और न जाने पर फिर उसके महत्व का अहसास होता है। आने वाला हर क्षण फिर कितना नया और अनोखा लगता है। आकाश, पक्षी, बादल, किसी सूखे तरु की धीरे से झांकती हुई कोई टहनी और खिड़की में हिलता हुआ परदा। चारों ओर फैली हुई नीरवता और कहीं दूर से आती हुई अस्पष्ट आवाजें, होस्पिटल की दवाओं की भभक यह सब भी तब जिन्दगी की रस से परिपूर्ण लगती हैं। लगता है जिन्दगी चौकड़ी भरती हुई मेरे लिए गीत गा रही है। कितना ज्यादा था आत्महत्या की असफलता का आनन्द। जीवित रहने की वेदना से भी ज्यादा.. (गहरी सांस भरकर) जिन्दगी को व्यर्थ जानकर फेंकने लगोगे, तभी उसके अस्तित्व का एहसास होगा, मजा है न? संजोकर रखो तो फेंक देने की इच्छा हो और फेंक दो तो उसके बच जाने का सुख मिले, कुछ भी सम्पूर्ण नहीं है। बार-बार वही, उसी तरह (शिक्षिका की तरह) जीवन ऐसा है, जीवन वैसा है, जीवन अमुक है, जीवन तमुक है - जीवन चिन्दी-चिन्दी होकर बिखरता हुआ एक ग्रन्थ है, जीवन यानी विश्वासघात है, जीवन यानी प्रतारणा है, जीवन यानी नशा है, जीवन यानी आवारागर्दी है। जीवन, यानी ऐसा कुछ है जो कुछ नहीं है या ऐसा कुछ भी नहीं है जो सचमुच कुछ हो। (सहसा कोर्ट के अनुरूप पोज लेकर) मी लॉर्ड... जीवन एक भयंकर हस्ती है। जीवन को फांसी पर लटका देना चाहिए। जीवन जीवन मर्हति जीवन की पड़ताल करके उसे नौकरी से निकाल देना चाहिए। लेकिन क्यों? क्यों आखिर? अपने काम में मैंने कभी कोई कोर-कसर की? प्राण देकर अपने बच्चों को बनाया है मैंने। शिक्षा दी है। जानती थी मैं, यह जिन्दीगी आसान नहीं है। आदमी बहुत क्रूर हो सकता है। अपने सगे-सम्बन्धी भी जानने-समझने की तवालत नहीं उठाएंगे। इस जीवन का बस एक ही सत्य है-शरीर। आप इससे इन्कार करें तो करें, करते रहें। मगर यही सत्य सर्वमान्य है। भावना तो बस आवाज में कम्पन पैदा करके मीठी-मीठी बातें करने

की अदा है। मैं देख रही थी सब कुछ। उसी में जी रही थी और भीतर ही भीतर झुलस रही थी। मगर क्या इस बात को कोई जानता है कि उन नन्ही-नन्ही कॉपलो को मैंने अपने उस झुलसन की आंच भी नहीं लगने दी। इस विष को अकेले पचाया है मैंने। यह जानते भी नहीं। उन्हें तो मैंने सौन्दर्य की शिक्षा दी है। मन में उमड़ती हुई हिचकियों को दबाकर उन्हें बेतहाशा हंसाया है मैंने। मन की निराशा को छुपाकर आशावादी बनाया है उन्हें। कौन सा यह गुनाह है जिसके आधार पर तुम मेरी नौकरी मेरी इकलौती खुशी छीन रहे हो मुझसे? मेरा निजी चरित्र मेरी अपनी समस्या है। अपने इस गुनाह का दंड क्या भोगना होगा, इसे मैं निश्चित करूंगी जैसे हर व्यक्ति को करना चाहिए। इस पर उगली उठाने का अधिकार किसी दूसरे को नहीं मिल सकता। हर किसी का अपना अलग व्यक्तित्व मार्ग और फिर अन्त होता है। मगर वह सार्वजनिक कैसे हो सकता है? (एकाएक स्कूल के हल्के फूल्के मूड में) शशडडड आवाज बन्द। साइलेन्स। कितना शोर? (कठघरे से निकलकर सब तरफ घूमने लगती है, जैसे क्लास रूम में चल रही हो।) एकदम चुपचाप बैठे रहो सब। (निश्चेष्ट बैठे हुए एक-एक व्यक्ति को बारी-बारी से देखकर) बेचारे बच्चो... जानते हो यह सब कौन है?

(एक एक चेहरे पर प्रकाश केन्द्रित होता है। सबके चेहरे भयानक, जडवत् प्रेत जैसे दिखाई देते हैं)

यह बीसवीं शताब्दी के सुसंस्कृत मानव के अवशेष है। देखो ये चेहरे कितने जंगली लग रहे हैं। होंठो पर घिसेपिटे खूबसूरत औपचारिक शब्द हैं, भीतर अतृप्त और विकृत वासनाएँ...

(स्कूल का पीरियड खत्म होने का घंटा। बच्चों का अस्पष्ट सा शोर। उसे सुनती-सुनती वह क्षण भर के लिए तल्लीन हो जाती है। आवाजें दूर होती अन्ततः डूब जाती है। एक चुप्पी। वह जैसे सोते से जागती हैं। अपने चारों तरफ देखती है और उस चुप्पी से बहुत भयभीत हो जाती है)

नहीं-नहीं, मुझे ऐसे अकेली छोड़कर न जाओ रे बच्चो। मुझे इनसे भय लगता है- बहुत भय लगता है। (भय से मुंहछुपाकर व्याकुल स्वर में) कबूल करती हूँ, मैंने पाप किया है। मैंने मां के भाई से प्रेम किया है। मगर घर के बन्धनों के बीच... मेरी खिलती गदराती हुई देह की बहार में अकेला वही तो मेरे करीब आया था- उसी ने तो उस बहार का दिन-रात बखान किया था... लाड किया, दुलराया... मुझे क्या पता कि हृदय से जिसके साथ एकरूप होने की तीव्र इच्छा होती हो... जिसके केवल संसर्ग से सम्पूर्ण जीवन सार्थक-सा लगता हो वह अगर मां का भाई है तो सब कुछ पाप में बदल जाएगा। अरे कुल चौदह साल की तो थी मैं। पाप क्या होता है यह जानती भी नहीं थी मैं- मां की सौगन्ध। (छोटी बच्ची की तरह बिलखकर रोती हुई) मैंने विवाह के लिए जिद की थी तो सिर्फ इसलिए कि औरों की तरह एक सुखी गृहस्थी की कल्पना मेरे मन में भी थी। मगर सबके

साथ मेरी मां ने उसका विरोध ही किया। मेरा पुरुष दुम दबाकर भाग गया। इतना क्रोध आया उस पर कि जी चाहा सरे बाजार खडा करके उसका मुंह तोड़ दूं। थूक दूं उसके मुंह पर... पर उस समय मैं बहुत छोटी थी, कमजोर थी, अनजान थी। अपने को मृत्यु के हवाले करने के लिए घर के छज्जे पर से कूद पड़ी। मगर मर नहीं सकी, सोचा, तन से नहीं मर सकी तो मन से तो मर ही गई हूं। मगर मैं मन से भी नहीं मर सकी थी। मैंने फिर से प्रेम किया था। सोच-समझकर किया। प्रौढ़ उम्र में किया- सोचा था कि यह प्रेम कुछ और तरह के है। यह प्रेम नहीं श्रद्धा है। यह एक अनूठी बौद्धिकता के प्रति आकर्षण है। यह प्रेम हो ही नहीं सकता, यह तो भक्ति है। मगर फिर मैंने भूल की। मन द्वारा की गई उस भक्ति में तन का नैवेद्य चढ़ गया। और नैवेद्य पाते ही मेरी बुद्धि का देवता मुकर गया। उसे मेरी भक्ति की, मेरी श्रद्धा की दरकार कहां थी? बिल्कुल ही नहीं थी। (हलके स्वर में) वह देवता था ही नहीं। वह मनुष्य था। बस। फिर वही शरीर... (चीखकर) यह शरीर ही सारा अनर्थ करता है। (वेदना से व्याकुल होकर) इस शरीर से घृणा है मुझे। और बहुत-बहुत प्यार भी है। इस पर क्रोध आता है, मगर इसके अस्तित्व को नकार नहीं सकती मैं। तो फिर? वह तो रहेगा ही और तेरा होकर ही रहेगा। इसे छोड़कर तू जाएगी कहां? और यह भी तुझे छोड़कर कहां जाएगा। कृतघ्न मत बन। यही है वह शरीर जिसने तपकर तुझको एक अतिशय सुखदायी स्वर्गिक तृप्त क्षण दिया था। भूल गई? यही है वह शरीर जिसने तपकर तुझको एक अतिशय सुखदायी स्वर्गिक तृप्त क्षण दिया था। भूल गई? यही है वह जिसने तुझे शरीर से परे-बहुत उंचे दिव्यलोक में उस क्षण पहुंचा दिया था। इन्कार करेगी? बोल। और अब उसी में तो पनप रहा है उस क्षण का साक्षी एक नन्हा कोमल अंकर... हां। मेरे बच्चे का है वह बीज मेरे प्राण का। जो कल हंसता खिलखिलाता, नाचता थिरकता एक जीव होगा। यह शरीर मुझे चाहिए - उसके लिए यह शरीर मुझे चाहिए। सचमुच चाहिए। (आंखें बंद हो जाती हैं। उसी आवेग में कुछ बुदबुदाती रहती हैं) उसे मां चाहिए- पिता का हकदार है वह। उसे घर चाहिए... संरक्षण चाहिए... प्रतिष्ठा चाहिए...

SOLILOQUY / DRAMATICS PASSAGE FOR MALE (GUJARATI)

Play: હમીદાબાઈની કોઠી

હમીદા શું કે છે લોકો? કે હમીદાબાઈએ ખાં સાહેબને ફસાવ્યા એમ જ ને? અને હમીદાબાઈના કારણે ખાં સાહેબની તબાહી થઈ, એમ જ ને? ખોટું કે છે લોકો ખાં સાહેબે જાજે જ પૈસાની તબાહી કરી છે. જુગાર રમતા હતા, ઘોડા પર પૈસા લગાવતા હતા અને એનો ઇલ્જામ એક ગરીબ તવાયફ પર? મને ખબર છે તમારા કહેવાનો મતલબ બીજો છે... ખાં સાહેબે પૈસા ચોક્કસ બરબાદ કર્યા હતાં પણ મોટું નામ કમાયા હતા.. હાં, કમાયા હતા નામ બઉં કમાયા હતા.. પણ એક નાનકડું નામ ના આપી શક્યા મારી છોકરીને.. અને હાં... શબ્દો ખાં સાહેબની છોકરી છે કે નહીં? એ આ અમારો ખાનગી મામલો છે.. ચાલો છોડો આ બધી વાતો, તમારે તો રેડિયો માટે ખાં સાહેબની યાદો જોઈએ છે. એમના સંગીત માટેના વિચાર સાંભળવા છે. તો સાંભળો, ખાં સાહેબ સાથે મારી પહેલી મુલાકાત ક્યારે અને કેવી રીતે થઈ? (વિચારમાં પડી જાય) એ તો વલીબાબાની મહેરબાની છે સાહેબ, (બાંગ સંભળાય) બઉં પુરાની વાત છે. 25 વર્ષ થઈ ગયા આ વાતને.. મીલાદ શરીફની રાત હતી સાહેબ.. તવાયફ જવાન થાય છે. કોઠી પર નાચવાનું ગાવાનું શરૂ કરે એની પેલ્લા મીલાદ શરીફ ખુદાની આગળ ગાય છે. ખુદા પાસે દુઆ માગે છે.. બસ, મીલાદ શરીફની રાત હતી. મેં લીલો ફૂતો અને સલવાર પહેરી હતી, મારી દાદી બોલી.. વલીબાબાને યાદર ચઢાવ અને વલીબાબા પાસે કોઈ પૈસાવાળા શેઠનો શોખ માંગ.. મેં યાદર ચઢાઈ વલીબાબા પાસે ઘુંટણ ટેકીને હાથ ફેલાયા અને કોઈ પૈસાવાળા શેઠની જગ્યાએ મેં વલીબાબા પાસે માંગ્યું, વલીબાબા મને પૈસો નથી જોઈતો ઘરેણા જેવર નથી જોઈતા, કોઈ પૈસાવાળો શેઠ પણ નથી જોઈતો.. પણ વલીબાબા મારા સૂરતાલને દિલથી દાદ આપી શકે એવો કોઈ ચાહવાવાળો આપ.. વલીબાબા સાંભળી રહ્યા હતા ખરેખર વલીબાબાએ સાંભળ્યું અને વલીબાબાની આગળ મેં ગઝલ ગાઈ (ગઝલ ગાવી) વલીબાબાની દરગાહ પર આવેલા ખાં સાહેબ આગળ આવ્યા અને

મને ઝુકીને સલામ કર્યા અને બોલ્યા.. બાઈ, ક્યા ખૂબ ચીઝ સુનાઈ હૈ અને હું ગાવા લાગી.. (ગાતા ગાતા થુંકદાનીમાં ઉલટી કરે) બેટા શબ્બો ચિંતા ના કર...કંઈ નથી થયું... બેટા પાનમાં કથ્થો જરા વધારે પડી ગયો.. પણ તું ચિંતા ના કરીશ બેટા અને સાહેબ મારી તમને એક વિનંતી છે.. થઈ શકે તો મારી છોકરીને કોઈ જગ્યાએ નોકરીએ લગાવો, આ વસ્તી એના માટે સારી નથી સાહેબ, આ વસ્તી એના માટે સારી નથી.. હું તમારા હાથ જોડું છું.. હાથ જ શું હું તમને મારું ગીત સંભળાવું છું.. (અને ગીત ગાવા માંડે)

Play: અંધ યુગ

ગાંધારી અસ્થિ - શેષ?
તો શું એ પડ્યું છે.
અસ્થિપિંજર મારાં પુત્ર નું?
(હૃદય વિદારક સ્વરમાં)
તો એ પડ્યું છે. અસ્થિપિંજર મારાં પુત્ર નું
કર્યું છે. આ બધું કૃષ્ણ
તેં કર્યું છે. આ
સાંભળ !
આજે તું પણ સાંભળ
હું તપસ્વિની ગાંધારી
મારાં સંપૂર્ણ જીવનનાં પુણ્યોનું
મારાં પાછલાં જન્મોનાં સઘળાં પુણ્યોનું
બળ લઈને કહું છું
કૃષ્ણ સાંભળ !
તુ જો ઈચ્છત તો રોકાઈ શક્યું હોત યુદ્ધ આ
મેં પ્રસવ ન હતું કર્યું અસ્થિપિંજર આ
તારા જ ઈશારે ભીમે અધર્મ કર્યો
કેમ નહીં તે એ શાપ આપ્યો ભીમને
જે તે આપ્યો નિરપરાધ અશ્વત્થામાને
તે કર્યો છે. પ્રભુતાનો દુરૂપયોગ
જો મારી સેવામાં બળ છે.
સંચિત તપમાં ધર્મ છે.
તો સાંભળ કૃષ્ણ !
પ્રભુ હો કે પરાત્પર
જે કંઈ પણ હો
સંપૂર્ણ તમારો વંશ
આવી જ રીતે હડકાયાં કૂતરાંઓની જેમ

એક-બીજાને પરસ્પર ફાડી ખાશે
તું પોતે તેમનો વિનાશ કરીને કેટલાંય વર્ષો પછી
કોઈ ગહન જંગલમાં
સાધારણ વ્યાધનાં હાથે માર્યો જઈશ
પ્રભુ છે.
પણ માર્યો જઈશ પશુઓની જેમ.

Play: રંગ બદલતી ઋતુ

સ્ત્રી ગરમ રહેવા માટે મારે કંઈક જોઈએ છે.. (શાંતિ) કોઈ ઉપાય નથી આજે? તમારી સ્ત્રીને ઠંડી લાગી રહી છે. (શાંતિ) અને તમારું મૌનથી એથી ય વધારે ઠંડુ છે.. તમારી બિચારી પત્ની ઠંડીને કારણે મરવા પડી છે.. (પુરુષ કબાટમાંથી બે શોલ કાઢે, એક ભૂરા રંગની છે બીજી લાલ. ભૂરી પોતે ઓઢે અને બીજી સ્ત્રીને આપે. હવે તે પાનખરના રંગોના પહેરવેશમાં છે - લીલી, પીળી, ભૂરી અને લાલ) તમે મને ઉષ્મા કેમ નથી આપતાં?

(પુરુષ ઇચ્છે છે, પણ શંકાશીલ છે. છેવટે એને પોતાના બાહુપાશમાં લે. એક દીર્ઘ ચુંબન, ઘણું દીર્ઘ ચુંબન, પ્રકાશ બદલાય. પુરુષ એકદમ શિથીલ થઈને સ્ત્રીના ખભા પર ઢળી પડે)

ઓહ, આ બધી રમત છે નહીં? ખરેખર આ જવાનીની રમત છે, એકદમ મોહક.. પણ હું એક ઉંમરલાયક સ્ત્રી છું.. આ રમત મને બેબાકળી બનાવી દે છે.. (થોડી રાહ જોઈને) જુઓ, હેરાન ના કરશો.. (પુરુષને સૂવડાવે. રૂમની દેખભાળ કરવા લાગે) મને ખબર છે, કે તમે મને ખુશ કરવા માગો છો, પણ મને શંકા છે કે તમારી આ રમત આપણી ઉંમરને લાયક નથી.. સાંભળો છો.. (એની પાસે જઈને અટકી જાય) અરે, ભગવાન તમારો ચહેરો કેટલો સફેદ પડી ગયો છે.. સાંભળો.. (એના માથા પર હાથ મૂકે) પણ કોઈ લક્ષણ તો નહોતા દેખાતાં.. ઓ ડફોળ છોકરાં.. કોના સંકંજામાં ફસાઈ ગયો તું? કોઈ જ લક્ષણ નહોતા.. આવો તાવ.. ડફોળ છોકરાં.. આવો તાવ..

(એના પર ચોરસો નાંખે, પથારી પાસે એક ખુરશી અને નાની મેજ મુકે. કબાટમાંથી બ્રાન્ડીની બોટલ કાઢે. થોડીક બ્રાન્ડી ગ્લાસમાં કાઢી પુરુષનાં હોંઠ પાસે ગ્લાસ લઈ જાય. એ કેટલીક પીએ પછી એ એને ચુમી લે. આગળના સંવાદમાં પ્રકાશ બદલાઈ જાય છે. કારણકે, પુરુષની સારસંભાળમાં ઘણો સમય વિતી ગયો છે. પુરુષ સ્થેજ હલનચલન કરે અને બબડે છે. સ્ત્રી એના ચહેરાને પંપાળે છે)

હું અહીં જ છું ડિયર.. તમારી પાસે જ.. બૂમ પાડવાની કોઈ જરૂર નથી.. ચૂપ રહો.. સૂતા રહો ચૂપચાપ.. હું અહીં જ છું..

(પુરુષ સ્વસ્થ થાય. સ્ત્રી પોતાના ખભા પર એક ચોરસો નાંખે)

મને થાય છે કે હું અત્યારે ગાઇ શકતી હોત.. તમે સાચુ કહો છો. આ પણ એક પ્રકારની ખોડખાંપણ જ છે કે તમારો અવાજ સંગીત ના રચી શકે. તમને ખબર છે, હું એટલી બેવફા નથી જેટલી લાગુ છું - ના તો કઠોર કે વિનોદહીન... ક્યારેક એક પ્રકારનો તાપ મને જકડી લે છે.. અને ત્યારે ખબર નથી પડતી શું બોલી નાખું છું. પણ હું હંમેશા સાચી હોઉં છું - છેવટે પોતાના પ્રત્યે અને સારી અને ખરેખર બહુ જ સમજદાર..

પણ, અત્યારે સાવ વેરવિખેર છું. મને શરમ આવે છે આ ગળા પર પડી ગયેલી કરચલીઓને કારણે. ઘસાઇ ગયેલાં અંગ - જૂના - એના કરતાં તો વાસી, સાચું કહું - વાસી, ઘવાયેલાં અને ઘસાઇ ગયેલાં.. હું થથરું છું અને કાંપી ઉઠું છું - ખોટા સમયે વાગી ઉઠતી ઘડિયાળની જેમ - અડધી રાતના ડંકા વગાડી દઉં છું જ્યારે ખરેખર તો માત્ર છ વાગ્યા હોય છે... કદાચ, આપણે પહેલાં મળ્યાં હોત તો કેટલું સારું થાત.. બીજા કોઇને મળ્યા પહેલાં.. ત્યારે - હાં ત્યારે સાચો સમય બતાવતી હોત આ ઘડિયાળ, પ્રત્યેક પળે એકદમ સ્પષ્ટ અને ખણકતો સમય.. કદાચ.. કદાચ.. કદાચ.. અને ત્યારે આપણે સાથી મળીને શું શું કર્યું હોત..?

ખબર છે, મારા પતિએ શું કહ્યું હતું? તું એક મલ્લિકા છે.. એણે કહ્યું - સલ્તનત વગરની મલ્લિકા.. સલ્તનત વગરની મલ્લિકાઓથી મને નફરત છે. એ સાચો હતો.. કોઇ ઘર નહીં, કોઇ પુરુષ નહોતો મારા સન્માન માટે.. જીવનભર હું શોધતી રહી ઇજ્જત અને શાંતિ, એક એવો પુરુષ જે નિડર અને ઉદાર હોય.. ઉદાર પણ હલકટ નહીં.. હલકટને હું સહન નથી કરી શકતી.. નીચ.. બકરીની માફક મેંએએએ કરતાં - એ લોકો પોતાના જ ચાળા પાડે અને બીજાને મ્હેણાં માર્યા કરે.. એ પતનનો આનંદ પામે છે અને કોઇ હિંમત નથી ધરાવતાં.. શાંતિ, ઇજ્જત અને હિંમત - જીવનભર તરસતી રહી છું આ બધાં માટે..

એણે એકવાર મને ધુમ્મસમાં એકલી છોડી દીધી - એ પુરુષ જેને મેં ઇશ્વર કહ્યો - શિમલાની ઘનઘોર ધુમ્મસમાં એકલો મૂકી જતો રહ્યો. શાંતિ, ઇજ્જત અને હિંમત.. અને, એકવાર હું એક વરસાદી તોફાનમાં દોડતી દોડતી એક સ્ટેશનના પ્લેટફોર્મ પર પહોંચી - ભીંજાતી અને રડતી.. ઉભી હતી.. મને હતું એ પોતાની સાથે લઇ જાય.. એની પણ ઇચ્છા હતી કારણકે, અમને બંનેને અજાણ્યા શહેરોની ગલીઓમાં ફરવાનું ગમતું - મકાનની નવી નવી ડિઝાઇનો

જોવી, નવી હવામાં શ્વાસ લેવો.. પણ, એણે પોતાની ઇચ્છા વ્યક્ત કરવાની પણ તસ્દી ના લીધી..

શાંતિ, ઇજ્જત અને હિંમત - ક્યારેય નહીં.. આ બધું મને ક્યારેય ના મળ્યું. કેટલી કડવી નિરાશા.. કડવી.. કડવી.. કડવી.. આ કડવાશને કારણે ઉત્પન્ન થાય છે નિષ્ફરતા. એ નિષ્ફરતા તમે નહીં સમજી શકો. હું ક્યારેય એવું કહેવા નહોતી માગતી, નિષ્ફરતા નો એક શબ્દ પણ નહીં.. અને એ જાણતો હતો.. હું પણ જાણતી હતી.. અમે બંને જામતા હતા કે અમે જાણીએ છીએ, પણ નિષ્ફરતા વધતી ગઈ..

તેમ છતાંય, પસ્તાવો કરીને વિતી ગયેલાંને સરખું નથી કરી શકાતું. મારે કાલની વાત વિચારવી જોઈએ.. નહીં? કારણકે, તમે જ્યારે ઉઠશો કાલે અથવા આવતા મહિને અથવા એ તમામ વર્ષ, જે આપણે સાથે વિતાવ્યા છે. એ વર્ષોમાં આપણે શું કરીશું.. બોલો? ઓહ, એ આવનાર મહાન લાંબા વર્ષો? મારી કેટલીક યોજનાઓ છે.. તમને ખબર છે, બાળકો, મુસાફરી, એ બધું જ કરવું જે કરવાની તમે પહેલાં હિંમત નહોતા કરતાં.. બે શાનદાર પ્રેમી.. અને સૌથી ઉપર શાંતિ - શાંતિ, વિશ્વાસ અને ઇજ્જત અને હિંમત - મોટી હિંમત હવે જલ્દીથી સારા થઈ જાવ, લાડકુંવર.. મારો અવાજ નથી ગાઈ શકતો પણ મારો પ્રેમ ગાય છે. સારા થઈ જાવ.. ચલો..

POEMS FOR MALE AND FEMALE

कृष्ण की चेतावनी / रामधारी सिंह "दिनकर"

वर्षों तक वन में घूम-घूम,
बाधा-विघ्नों को चूम-चूम,
सह धूप-घाम, पानी-पत्थर,
पांडव आये कुछ और निखर।
सौभाग्य न सब दिन सोता है,
देखें, आगे क्या होता है।

मैत्री की राह बताने को,
सबको सुमार्ग पर लाने को,
दुर्योधन को समझाने को,
भीषण विध्वंस बचाने को,
भगवान् हस्तिनापुर आये,
पांडव का संदेशा लाये।

‘दो न्याय अगर तो आधा दो,
पर, इसमें भी यदि बाधा हो,
तो दे दो केवल पाँच ग्राम,
रक्खो अपनी धरती तमाम।
हम वहीं खुशी से खायेंगे,
परिजन पर असि न उठायेंगे!

दुर्योधन वह भी दे ना सका,
आशीष समाज की ले न सका,
उलटे, हरि को बाँधने चला,
जो था असाध्य, साधने चला।
जब नाश मनुज पर छाता है,
पहले विवेक मर जाता है।

हरि ने भीषण हुंकार किया,
अपना स्वरूप-विस्तार किया,
डगमग-डगमग दिग्गज डोले,
भगवान् कुपित होकर बोले-
'जंजीर बढ़ा कर साध मुझे,
हाँ, हाँ दुर्योधन! बाँध मुझे।

यह देख, गगन मुझमें लय है,
यह देख, पवन मुझमें लय है,
मुझमें विलीन झंकार सकल,
मुझमें लय है संसार सकल।
अमरत्व फूलता है मुझमें,
संहार झूलता है मुझमें।

'उदयाचल मेरा दीप्त भाल,
भूमंडल वक्षस्थल विशाल,
भुज परिधि-बन्ध को घेरे हैं,

मैनाक-मेरु पग मेरे हैं।
दिपते जो ग्रह नक्षत्र निकर,
सब हैं मेरे मुख के अन्दर।

‘दृग हों तो दृश्य अकाण्ड देख,
मुझमें सारा ब्रह्माण्ड देख,
चर-अचर जीव, जग, क्षर-अक्षर,
नश्वर मनुष्य सुरजाति अमर।
शत कोटि सूर्य, शत कोटि चन्द्र,
शत कोटि सरित, सर, सिन्धु मन्द्र।

‘शत कोटि विष्णु, ब्रह्मा, महेश,
शत कोटि विष्णु जलपति, धनेश,
शत कोटि रुद्र, शत कोटि काल,
शत कोटि दण्डधर लोकपाल।
जञ्जीर बढ़ाकर साध इन्हें,
हाँ-हाँ दुर्योधन! बाँध इन्हें।

‘भूलोक, अतल, पाताल देख,
गत और अनागत काल देख,
यह देख जगत का आदि-सृजन,
यह देख, महाभारत का रण,
मृतकों से पटी हुई भू है,
पहचान, इसमें कहाँ तू है।

‘अम्बर में कुन्तल-जाल देख,
पद के नीचे पाताल देख,
मुट्ठी में तीनों काल देख,
मेरा स्वरूप विकराल देख।
सब जन्म मुझी से पाते हैं,
फिर लौट मुझी में आते हैं।

‘जिह्वा से कढ़ती ज्वाल सघन,
साँसों में पाता जन्म पवन,
पड़ जाती मेरी दृष्टि जिधर,
हँसने लगती है सृष्टि उधर!
मैं जभी मूँदता हूँ लोचन,
छा जाता चारों ओर मरण।

‘बाँधने मुझे तो आया है,
जंजीर बड़ी क्या लाया है?
यदि मुझे बाँधना चाहे मन,
पहले तो बाँध अनन्त गगन।
सूने को साध न सकता है,
वह मुझे बाँध कब सकता है?

‘हित-वचन नहीं तूने माना,
मैत्री का मूल्य न पहचाना,
तो ले, मैं भी अब जाता हूँ,
अन्तिम संकल्प सुनाता हूँ।

याचना नहीं, अब रण होगा,
जीवन-जय या कि मरण होगा।

‘टकरायेंगे नक्षत्र-निकर,
बरसेगी भू पर वह्नि प्रखर,
फण शेषनाग का डोलेगा,
विकराल काल मुँह खोलेगा।
दुर्योधन! रण ऐसा होगा।
फिर कभी नहीं जैसा होगा।

‘भाई पर भाई टूटेंगे,
विष-बाण बूँद-से छूटेंगे,
वायस-शृगाल सुख लूटेंगे,
सौभाग्य मनुज के फूटेंगे।
आखिर तू भूशायी होगा,
हिंसा का पर, दायी होगा।’

थी सभा सन्न, सब लोग डरे,
चुप थे या थे बेहोश पड़े।
केवल दो नर ना अघाते थे,
धृतराष्ट्र-विदुर सुख पाते थे।
कर जोड़ खड़े प्रमुदित,
निर्भय, दोनों पुकारते थे ‘जय-जय’!

अज्ञात देश से आना / भगवतीचरण वर्मा

मैं कब से ढूँढ़ रहा हूँ
अपने प्रकाश की रेखा
तम के तट पर अंकित है
निःसीम नियति का लेखा

देने वाले को अब तक
मैं देख नहीं पाया हूँ,
पर पल भर सुख भी देखा
फिर पल भर दुख भी देखा।

किस का आलोक गगन से
रवि शशि उडुगन बिखराते?
किस अंधकार को लेकर
काले बादल घिर आते?

उस चित्रकार को अब तक
मैं देख नहीं पाया हूँ,
पर देखा है चित्रों को
बन-बनकर मिट-मिट जाते।

फिर उठना, फिर गिर पड़ना
आशा है, वहीं निराशा

क्या आदि-अन्त संसृति का
अभिलाषा ही अभिलाषा?

अज्ञात देश से आना,
अज्ञात देश को जाना,
अज्ञात अरे क्या इतनी
है हम सब की परिभाषा?

पल-भर परिचित वन-उपवन,
परिचित है जग का प्रति कन,
फिर पल में वहीं अपरिचित
हम-तुम, सुख-सुषमा, जीवन।

है क्या रहस्य बनने में?
है कौन सत्य मिटने में?
मेरे प्रकाश दिखला दो
मेरा भूला अपनापन।

आधुनिक जगत की स्पर्धपूर्ण नुमाइश में / हरिवंशराय बच्चन

आधुनिक जगत की स्पर्धपूर्ण नुमाइश में

हैं आज दिखावे पर मानवता की किस्में,

है भरा हुआ आँखों में कौतूहल-विस्मय,

देखें इनमें

कहलाया जाता

कौन मीर?

दुनिया के तानाशाहों का सर्वोच्च शिखर,

यह फ्रैंको, टोजो, मसोलिनी पर हर हिटलर,

यह रूज़वेल्ट, यह डूमन, जिसकी चेष्टा पर

हीरोशीमा, नागासाकी पर ढहा क्रहर,

यह है चियांग, जापान गर्व को मर्दित कर

जो अर्द्ध चीन के साथ आज करता आज संगर,

यह भीमकाय चर्चिल है जिसको लगी फ़िकर

इंगलिस्तानी साम्राज्य रहा है बिगड़-बिखर,

यह अफ्रीका का स्मट्स खबर है जिसे नहीं,

क्या होता, गोरे-काले चमड़े के अंदर,

यह स्टलिनग्राड

का स्टलिन लौह का

ठोस बोरा।

जग के इस महाप्रदर्शन के नम्रता सहित
संपूर्ण सभ्यता भारतीय, सारी संस्कृति
के युग-युग की साधना-तपस्या की परिणति,
हम में जो कुछ सर्वोत्तम है उसका प्रतिनिधि

हम लाए हैं
अपना बूढ़ा-
नंगा फ़कीर।

જટાયુ / સિતાંશુ યશશ્વંદ્ર મહેતા

નગર અયોધ્યા ઉત્તરે, ને દખ્ખણ નગરી લંક
વચ્ચે સદસદ્જ્યોત વિહોણું વન પથરાયું રંક.

ધવલ ધર્મજ્યોતિ, અધર્મનો જ્યોતિ રાતોચોળ
વનમાં લીલો અંધકાર, વનવાસી ખાંખાંખોળ.

શબર વાંદરાં રીંછ હંસ વળી હરણ સાપ ખિસકોલાં
શુક-પોપટ સસલાં શિયાળ વડુ મોર વાઘ ને હોલાં

વનનો લીલો અંધકાર જેમ કહે તેમ સૌ કરે
ચરે, ફરે, રતિ કરે, ગર્ભને ધરે, અવતરે, મરે.

દર્પણ સમ જલ હોય તોય નવ કોઈ જુએ નિજ મુખ
બસ, તરસ લાગતાં અનુભવે પાણી પીધાનું સુખ.

જેમ આવે તેમ જીવ્યા કરે કેં વધુ ન જાણે રંક :
ક્યાં ઉપર અયોધ્યા ઉત્તરે, ક્યાં દૂર દખ્ખણે લંક.

૨.

વનમાં વિવિધ વનસ્પતિ, એની નોખી નોખી મઝા
વિવિધ રસોની લ્હાણ લો, તો એમાં નહીં પાપ નહીં સજા.

પોપટ શોધે મરચીને, મધ પતંગિયાની ગોત
આંબો આપે કેરી, દેહની ડાળો ફળતી મોત.

કેરી ચાખે કોકિલા અને જઈ ઘટા સંતાય
મૃત્યુફળનાં ભોગી ગીધો બપોરમાં દેખાય.

જુઓ તો જાણે વગર વિચારે બેઠાં રહે બહુ કાળ
જીવનમરણ વચ્ચેની રેખાની પકડીને ડાળ.

ડોક ફરે ડાબી, જમણી : પણ એમની એમ જ કાય
(જાણે) એક ને બીજી બાજુ વચ્ચે ભેદ નહીં પકડાય.

જેમના ભારેખમ દેહોને માંડ ઊંચકે વાયુ
એવાં ગીધોની વચ્ચે એક ગીધ છે : નામ જટાયુ.

૩ .

આમ તો બીજું કંઈ નહીં, પણ એને બહુ ઊડવાની ટેવ
પહોર ચડ્યો ના ચડ્યો જટાયુ ચડ્યો જુઓ તતખેવ.

ઊંચે ઊંચે જાય ને આઘે આઘે જુએ વનમાં
(ત્યાં) ઊના વાયુ વચ્ચે એને થયા કરે કંઈ મનમાં.

ઊની ઊની હવા ને જાણે હૂંફાળી એકલતા
કિશોર પંખી એ ઊડે ને એને વિચાર આવે ભળતા.

વિચાર આવે અવનવા, એ ગોળ ગોળ મૂંઝાય
ને ઊની ઊની એકલતામાં અધ્ધર ચડતો જાય.

જનમથી જ જે ગીધ છે એની આમે ઝીણી આંખ
એમાં પાછી ઉમેરાઈ આ સતપત કરતી પાંખ.

માતા પૂછે બાપને : આનું શુંય થશે, તમે કેવ
આમ તો બીજું કંઈ નહીં પણ આને બહુ ઊડવાની ટેવ.

૪.

ઊડતાં ઊડતાં વર્ષો વીત્યાં ને હજી ઊડે એ ખગ
પણ ભોળું છે એ પંખીડું ને આ વન તો છે મોટો ઠગ !

(જ્યમ) અધરાધરમાં જાય જટાયુ સહજ ભાવથી સાવ
(ત્યમ) જુએ તો નીચે વધ્યે જાય છે વનનો પણ ઘેરાવ.

હાથવા ઊંચો ઊડે જટાયુ તો વાંસવા ઠેકે વન
તુલસી તગર તમાલ તાલ તરુ જોજનનાં જોજન.

ને એય ઠીક છે, વન તો છે આ ભોળિયાભાઈની મા :
લીલોછમ અંધાર જે દેખાડે તે દેખીએ, ભા !

હસીખુશીને રહો ને ભૂલી જતા ન પેલી શરત,
કે વનનાં વાસી, વનના છેડા પાર દેખના મત.

ને વૃદ્ધ હાથે પકડી બપોરના
તું હોય રામાયણ વાંચતી સખી
ઝીણાં કરી લોચન બે નમીને;
ને વિપ્રલંભે કૃશકાય આકુલા
કારુણ્યમૂર્તિ અહ દગ્ધ જાનકી
ઊભી રહી હો તુજ નેત્રની નીચે
પૃષ્ઠો પરે જીર્ણ; જરાક રમ્ય
મોતી ઝઝૂમે ચખ વૃદ્ધમાં;
કહું ?

ત્યારે અનુજ્ઞા લઈ ઇન્દ્રની સખી
પતંગિયું એક બની સુવર્ણનું
આવીશ પૃષ્ઠો પર બેસવા ક્ષણ.

૨

ઊંચી તમારી પ્રિય પુષ્ટ કાયા
નાહ્યા પછી રોજની જેમ હાથમાં
પ્રવેશશે છાબ લઈ, અજસ્ર
મોંથી હશે મંત્ર ઝરંત સિક્ત
નમેલ બે સ્કંધ પરે પ્રશસ્ત

ઢબ્યો હશે આતપ સે'જ હે સખે
વિશ્રબ્ધ મારા મુખ શો; ધીમે ધીમે
આવી અહીં આંગણમાં કરેણની
ડાળી પરે દક્ષિણ હાથ દીર્ઘ
લંબાવશો; કંપતી અંગુલિ થકી
થશે જરી સ્પર્શ ત્યહીં જ હું પ્રિયે
ગરીશ (રાતું ફૂલ) રોજ છાબમાં.

અંધેર નગરી / દલપતરામ

પૂરી એક અંધેરી ને ગંડુ રાજા,
ટકે શેર ભાજી ને ટકે શેર ખાજાં;
બધી ચીજ વેચાય ત્યાં ભાવ એકે,
કદી સારી બૂરી ન વેચે વિવેકે.

ત્યાં જઈ ચઢ્યા બે ગુરુ એક ચેલો,
ગયો ગામમાં માગવા શિષ્ય પેલો;
લીધી સુખડી હાટથી આપી આટો,
ગુરુ પાસ જઈને કહે, "ખૂબ ખાટ્યો."

ગુરુજી કહે, "રાત રહેવું ન આંહી,
સહુ એક ભાવે ખપે ચીજ જ્યાંહી;
હશે ચોરને શાહનો ન્યાય એકે,
નહી હોય શિક્ષા ગુનાની વિવેકે...

ન એ વસ્તીમાં એક વાસો વસીજે,
ચલો સઘ ચેલા જવું ગામ બીજે."
કહે શિષ્ય, "ખાવા પીવા ખૂબ આંહી,
તજી તેહ હું તો ન આવીશ ક્યાંહી."

ગુરુએ બહુ બોધ દીધો જ ખાસો,

"નહીં યોગ્ય આંહી રહે રાતવાસો."

ન માની કશી વાત તે શિષ્ય જ્યારે,
ગુરુજી તજીને ગયા ગામ ત્યારે.

રહ્યા શિષ્યજી તો ત્યહાં દિન ઝાઝા,
બહુ ખાઈપીને થયા ખૂબ તાજા;
પછીથી થયા તેહના હાલ કેવા,
કહું છું હવે હું સુણો સદ્ય તેવા.

તસ્કર ખાતર પાડવા, ગયા વણિકને ઝાર;
તહાં ભીત તૂટી પડી, ચોર દબાયા ચાર.
માત પ્રભાતે ચોરની, ગઈ નૃપને ફરિયાદ;
શૂળી ઠરાવી શેઠને, ડોશીની સૂણી દાદ.

"એવું ઘર કેવું ચણ્યું, ખૂન થયાં તે ઠાર;
રાતે ખાતર ખોદતાં, ચોર દબાયા ચાર."
વણિક કહે, "કડિયા તણો એમાં વાંક અપાર;
ખરેખરી એમાં નથી, મારો ખોડ લગાર."

કડિયાને શૂળી ઠરી, વણિક બચ્યો તે વાર;
ચૂકે ગારો કરનારની, કડિયે કરી ઉચ્ચાર.
ગારો કરનાર કહે, "પાણી થયું વિશેષ;
એ તો ચૂક પખાલીની, મારી ચૂક ન લેશ"

પુરપતી કહે પખલીને, "જો તું શૂળીએ જાય,
આજ પછી આ ગામમાં, એવા ગુના ન થાય."
"મુલ્લાં નીસર્યા મારગે, મેં જોયુ તે દિશ;
પાણી અધિક તેથી પડ્યું, રાજા છાંડો રીસ."

મુલ્લાંજીને મારવા, કરી એવો નિરધાર;
શૂળી પાસે લઈ ગયા, મુલ્લાંને તે વાર.
ફળ જાડું શૂળી તણું, મુલ્લાં પાતળે અંગ;
એવી હકીકત ચાકરે, જઈ કહી ભૂપ પ્રસંગ.

ભૂપ કહે, "શું હરઘડી આવી પૂછો કોઈ;
શોધી ચઢાવો શૂળીએ, જાડા નરને જોઈ."
જોતાં જોતાં એ જડ્યો, જોગી જાડે અંગ;
બહુ દિન ખાઈને બન્યો, રાતે માતે રંગ

શિષ્ય મુદત માગી ગયો ગુરુ પાસે પસ્તાય;
ગુરુએ આવી ઉગારિયો, અદભૂત કરી ઉપાય.
જોગી શૂળી પાસ જઈ કહે, "ભૂપ સુણ કાન,
આ અવસર શૂળીએ ચઢે, વેગે મળે વિમાન."

ચેલો બોલ્યો, "હું ચઢું" ને ગુરુ કહે, "હું આપ;"
અધિપતિ કહે, "ચઢીએ અમો, પૂરણ મળે પ્રતાપ."

ગુરુ ચેલાને ગામથી, પહોંચાડ્યા ગાઉ પાંચ;
રાજા શૂળી પર રહ્યો, અંગે વેઠી આંચ.
